निरालाजी की स्मृतियाँ

निरालाजी अपनी कविताओं के कारण जितने प्रसिद्ध हैं उतने ही अपने जीवन के उदात्त और विलक्षण व्यवहार के कारण वे निरंतर लोगों की चर्चा के विषय रहे हैं. सौभाग्यवश, मुझे उन्हें निकट से जानने का अवसर मिला है इसलिए उनकी बहुत सी दुर्लभ स्मृतियाँ मेरे मन में सुरक्षित हैं जिनमें से कुछ मैं यहाँ लिपिबद्ध कर रहा हूँ . यों तो डॉ. रामविलास शर्मा ने उनकी जीवनी लिखकर अपने दायित्व का निर्वाह बहुत सुन्दर ढंग से किया है, परतु जीवनी-लेखक की अपनी एक सीमा होती है. विभिन्न व्यक्तियों के संस्मरणों में किसीका जो चित्र उभरता है उसकी छवि कुछ और ही होती है. इस दृष्टि से शायद मेरा यह प्रयास लोगों को रुचिकर लगेगा.

पहली भेंट निरालाजी से मेरी १९४० में काशी में हुई थी. एक विद्यार्थी कवि के रूप में मेरी कविताएँ उन्हें पसंद आयीं थीं और उन्होंने मुझे बहुत प्रोत्साहन दिया था. उस समय मेरी अवस्था मात्र १५-१६ वर्ष की थी और मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का इंटर द्वितीय वर्ष का क्षात्र था. निरालाजी जब काशी आते थे तो बेढब बनारसीजी के यहाँ ठहरा करते थे और अक्सर दो-दो, तीन-तीन दिन रुका करते थे. बेढबजी मेरे साहित्य के प्रशंसक थे. जब निरालाजी काशी आते थे तो मैं होस्टल से छुट्टी लेकर काफी समय उनके साहचर्य में बिताता था.

१९४० में काशी नागरी प्रचारणी सभा की ओर से प्रसादजी की जयन्ती मनायी गयी थी जिसमें निरालाजी मुख्य अतिथि बनकर आये थे और उन्होंने प्रसादजी पर एक लम्बी कविता पढ़ी थी जिसमें उस समय के सभी प्रमुख कवियों का नामोल्लेख था. उसमें 'गुलाब कवि' के रूप में मेरा नाम भी गिनाया था जो एक सेकेण्ड इयर के विद्यार्थी के लिए बड़े गौरव और हर्ष की

बात थी. यही नहीं, कविता पढ़ने के बाद मंच से उतरते ही उन्होंने मुझ देखकर कहा था, "देखो, बेटा, नाम तो सबका गिनाया है पर कवि तुम्हींको माना है." निरालाजी की उक्त कविता उनके कविता-संग्रह 'अणिमा' में 'आदरणीय प्रसादजी के प्रति' शीर्षक से छपी है. उसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"गद्य-पद्य की प्रतिभा की साहित्य समर की
सुमन, विनोद, उग्र, पाठक, बेढब बनारसी
नन्ददुलारे, चन्द्रप्रकाश कुँवर , शिवमंगल
इलाचन्द्र, बच्चन, हृदयेश, सुमित्रा (देवी) निर्मल,
कोकिल, विनयकुमार, श्याम, राखाल मंजुछवि, नीलकंठ,
सर्वदानन्द, गिरिजा, **गुलाब कवि,"**

जब रवीन्द्रनाथ बीमार हुए

१९४१ में रवीन्द्रनाथ बहुत अधिक अस्वस्थ थे. मैंने उस समय 'माँझी' शीर्षक से एक कविता उनपर लिखी थी. निरालाजी उन्हीं दिनों काशी आये थे. जब मैं उनसे मिलने पहुँचा तो उन्होंने कहा, "कुछ नया लिखा हो तो सुनाओ"

मैंने वही कविता उनको सुना दी. उस कविता में रवीन्द्रनाथ का बूढ़े माँझी के रूप में चित्रण किया गया था. कविता की अंतिम पंक्तियाँ यों थीं –

"शिथिल बाँह, पग काँप रहे, कंठस्वर रुँधने को आया
झुकी कमर, जड़ काष्ट उँगलियाँ, जीर्ण त्वचा, जर्जर काया
समझा, जीवन की संध्या में आज पुकार रहा किसको
कौन तरुण वह, सौंप चला जायेगा यह नौका जिसको!
आजा, माँझी! छाया-सा चुपचाप उतर निर्जन तट पर

इन लहरों से मैं खेलूँगा अब तेरी नौका लेकर"

निरालाजी रचना सुनकर गंभीर हो गये. बोले, "ज़रा खड़े हो जाइए." मैं खडा हो गया. वे फिर बोले, यदि रवीन्द्रनाथ की पुस्तकें एक पर एक रख दी जायँ तो आपके सर के ऊपर चली जायेंगी. आपने ऐसा कैसे लिख दिया?"

मैं हतप्रभ-सा चुपचाप खड़ा रहा. कुछ देर चुप रह कर निरालाजी फिर बोले, "लेकिन तुम्हारी कविता बहुत सुन्दर है."

आप' से 'तुम' का संबोधन सुनकर मैं समझ गया कि उनका क्रोध काफ़ूर हो गया है.

निरालाजी के प्रबंध काव्य अत्यंत क्लिष्ट हैं और समझने में मुझे कठिनाई होती थी. एक बार मैंने विनोद में उनसे कहा, "निरालाजी, लोग कहते हैं, 'आपके 'तुलसीदास' काव्य के हर छंद के बाद यदि 'छू' और जोड़ दिया जाय तो साँप झाड़ने का मन्त्र बन जाय.' वह मेरी समझ में भी नहीं आता."

निरालाजी ने गंभीरता से कहा, "लोगों को कहने दो. परन्तु तुम्हारी समझ में आने के लिए तुम्हें एम. ए. हिन्दी में फर्स्ट क्लास में पास होना होगा. तभी तुम्हारी समझ में थोड़ा-थोड़ा आने लगेगा."

निरालाजी ने सर्वहारा वर्ग के प्रति सच्ची सहानुभूति से प्रेरित होकर बहुत सी प्रगतिवादी कविताएँ लिखी थीं. उनकी 'कुकुरमुत्ता' नामक एक पुस्तक प्रकाशित भी हो चुकी थी . फिर भी प्रगतिवादी साहित्यिक पंत को ही मान्यता देते थे. पंत के परम प्रशंसक समालोचक पं. शांतिप्रिय द्विवेदी ने एक स्थान पर लिख दिया था कि निरालाजी प्रगतिवादियों के खेमे में पंचमांगी बनकर घुसे हुए हैं.

एक बार काशी में जब निरालाजी आये तो शांतिप्रियजी उनसे मिलने आये. शान्तिप्रियजी ने निरालाजी के प्रति ज्यों ही औपचारिक प्रशंसा के शब्द कहे तो निरालाजी का मूड खराब हो गया. वे बनावटी बातों से बहुत चिढ़ते थे. उन्होंने खड़े होकर शान्तिप्रियजी को लक्ष्य करते हुए कहा, "क्षुद्र व्यक्ति, साहित्यिकों का चोबदार, निराला इस प्रकार की आलोचना का उत्तर चाँटे से देता है परन्तु तू मेरी हल्की सी भी चोट बर्दाश्त नहीं कर सकता नहीं तो आज तुझे अपनी कटूक्ति का उत्तर भली-भाँति मिल जाता."

एक ओर निरालाजी का साढ़े छह फुटा लंबा-चौड़ा कसरती शरीर, दूसरी ओर साढ़े चार फुट के दुबले-पतले शान्तिप्रियजी. हमलोग आशंकित हो उठे. शान्तिप्रियजी के बराबर क्षमायाचना करने पर बड़ी कठिनाई से निरालाजी का रोष शांत हुआ और उसके बाद वे अपने प्राकृतिक उदार रूप में आ गये. उन्होंने शान्तिप्रियजी के जाने पर कहा, "जब यह व्यक्ति सही दिमाग से लिखता है तो देवदूत के समान लिखता है."

पहलवानी शरीर

निरालाजी के लम्बे-चौड़े पहलवानी शरीर से संबंधित एक रोचक घटना याद आ रही है. काशी में एक बार निरालाजी के आने पर उर्दू के प्रसिद्ध शायर नज़ीर बनारसी उन्हें एक कवि-गोष्ठी के लिए आमन्त्रण देने आये. सुबह का समय था. निरालाजी काशी के दशाश्वमेध घाट पर स्नान करने गये थे. नज़ीर बनारसी को वहीं भेज दिया गया. नज़ीर भी कद में साढ़े चार फुट से अधिक न थे. जब वे गंगा किनारे पहुँचे तो निरालाजी नंगे बदन केवल लँगोट पहने लेटे-लेटे तेल की मालिश करा रहे थे. नज़ीर के शब्दों से अधिक उनका ध्यान नज़ीर के कद की ओर था. वे नज़ीर की बातें सुनते थे और उनकी ओर देखते हुए बराबर लबालब भरी हुई गंगा की ओर दृष्टि

घुमाते जाते थे. सहसा नज़ीर के मन में यह बात कौंध गयी कि निरालाजी उनके शब्दों को नहीं सुन रहे हैं. बार-बार अपनी ओर कुतूहल से देखते हुए और बीच-बीच में गंगा की ओर देखते जाने से उन्हें लगा की निरालाजी उन्हें गंगा में गोते दिलाना चाहते हैं. सहसा निरालाजी बैठे हो गये और नज़ीर चार कदम पीछे हटकर खड़े हो गये कि यदि निरालाजी उन्हें पकड़ना चाहें तो वे बचकर भाग सकें. निरालाजी नज़ीर की आशंका समझ गये थे और अब उन्हें इसमें लुत्फ़ आने लगा था. वे खड़े हो गये और उनके खड़े होते ही नज़ीर और आठ-दस कदम सतर्कता से पीछे हटकर खड़े हो गये.

एकाएक निरालाजी ने 'हूँ' शब्द किया और नज़ीर की ओर लपके. अब तो नज़ीर को अपनी आशंका में ज़रा भी संदेह रह गया और वे बड़ी तेजी से मुड़कर बिना कहीं रुके भागे. बहुत दूर भागते जाने के बाद जब सड़क का मोड़ आया तो उन्होंने मुड़कर देखा कि निरालाजी पीछा तो नहीं कर रहे हैं. नज़ीर के घूमकर देखते ही निरालाजी जहां खड़े थे वहीं से ताल ठोकते हुए बड़े जोर से 'हूँ' शब्द करते हुए आगे की ओर झुके. फिर तो नज़ीर ने ऐसी सरपट दौड़ लगाई कि बेढबजी के घर पर पहुँचकर ही दम लिया. पूरी कहानी सुनने के बाद हमलोगों का हँसी के मारे बुरा हाल था. घाट से लौटकर निरालाजी ने बड़े विनोद के साथ नज़ीर के उनसे डरकर भागने की कहानी सुनायी.

उदारता

ऊपर मैंने हलके-फुल्के प्रसंगों का वर्णन किया है. निरालाजी की उदारता के एक-दो संस्मरणों के लिखे बिना उनके व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं किया जा सकता. एक बार बांदा के एक कवि-सम्मेलन के लिए निरालाजी को आमंत्रित करने कुछ लोग आये. निरालाजी ने कहा, "न तो मेरे

पास सम्मलेन के लायक कपड़े हैं न जाड़े में बाहर ले जाने लायक कोई रजाई. मैं कैसे चल सकता हूँ?"

तुरत उनके लिए खादी-भण्डार से नए कपड़े लाये गए तथा एक सिल्क के पल्ले की रजाई तैयार कराई गयी. कवि-सम्मलेन में जिस जगह कवियों को ठहराया गया था वहाँ कमरे के बाहर एक बूढा दरबान सर्दी में लेटा खाँस रहा था. निरालाजी ने एक-दो बार कहा कि "बिचारा सर्दी खा रहा है" और फिर सम्मलेन के बाद चलते समय अपनी नई सिल्क वाली रजाई उसे उढ़ा दी और आप ठिठुरते हुए इलाहाबाद लौट आये.

इसी तरह की एक दूसरी घटना है. मैंने १९४३ में बंगाल के अकाल-पीड़ितों के लिए गया में एक कवि-सम्मलेन किया था. उसमें मैंने अध्यक्षता हेतु निरालाजी को बुलाया था और उसके लिए मार्ग-व्यय के रूप में उनके पास रु. १५० इलाहाबाद भेजे थे जो उन दिनों के लिए एक अच्छी रकम थी. निरालाजी मेरे लिए अमरूदों की एक टोकरी लिए एक अन्य विद्यार्थी कवि के साथ गया पहुँचे.

कवि-सम्मलेन के बाद एक अन्य युवा कवि श्री जानकी वल्लभ शास्त्री से उन्होंने हाल-चाल पूछा. शास्त्रीजी के यह कहने पर कि आजकल वे बेकार हैं और बड़ी कठिनाई से गुजर हो रही है, निरालाजी ने चुपचाप अपनी जेब से रुपयों का बटुआ जिसमें उनकी कुल जमा पूँजी थी, शास्त्रीजी को थमा दिया. तीन-चार दिन मेरे घर रुकने के बाद जब मैं उन्हें विदा करने स्टेशन पर आया तो मैंने उनके और उनके साथ के विद्यार्थी के लिए दो फर्स्ट क्लास के टिकट देकर उन्हें दो सौ रुपये देने चाहे. टिकट तो उन्होंने ले लिया परन्तु रुपया यह कहते हुए लौटा दिया, 'तुम्हारे पास मेरा जमा रहेगा,' और वे खाली हाथ फक्कड़ की तरह लौट गए.

चार-पाँच वर्षों के बाद इस घटना को उन्होंने किस तरह याद किया इसका भी एक मनोरंजक प्रसंग है. निरालाजी की मानसिक स्थिति समय-समय पर असंतुलित हो जाती थी. कविता लिखते और पढ़ते समय साधारण व्यवहार में तो वे सामान्य रहते थे परन्तु मंच पर भाषण करने में या आवेश में आने पर वे बहकने लगते थे. दीर्घकाल तक आर्थिक अभाव, साहित्यिक संघर्ष तथा उपेक्षाएँ झेलने के कारण उनके मस्तिष्क में कितनी ही ग्रंथियाँ (कम्प्लेक्स) उत्पन्न हो गयी थीं.

१९४८ में आचार्य नरेंद्र देव की अध्यक्षता में उनकी स्वर्ण-जयन्ती काशी की नागरी प्रचारिणी सभा में मनायी जा रही थी. काव्य-पाठ तो निरालाजी ने बहुत सुन्दर ढंग से किया परन्तु भाषण करते समय वे बहकने लगे. कितनी ही असंगत बातों के अतिरिक्त उन्होंने कहा, "मेरे बहुत से रुपये टाटा और बिड़ला के यहाँ जमा हैं." और मेरी और इशारा करके बोले, "और इस गुलाब के यहाँ भी मेरे रुपये जमा हैं. इससे पूछ लीजिए."

मैं निरालाजी की बगल में बैठा था और मैंने तुरत हामी भरी कि निरालाजी ठीक कहते हैं. इस प्रकार १९४३ की बात १९४८ में निरालाजी को एकाएक स्मरण हो आयी.

हिन्दी का मूल्यांकन

निरालाजी आत्म-सम्मान और हिन्दी की गरिमा का प्रश्न आते ही पैसों की बिलकुल परवाह नहीं करते थे. अपने प्रथम काव्य-संग्रह 'कविता' की भूमिका लिखाने १९४१ में मैं उनके निवास पर गया था. उन दिनों वे लखनऊ के हाथीखाना मुहल्ले के एक छोटे से घर में रहते थे. उनके कमरे में चारों ओर पुस्तकों का अम्बार लगा हुआ था. मेरी भूमिका लिखने के बाद उन्होंने पूछा कि क्या तुम्हारे पास दो आने (इस समय के बारह पैसे) हैं. मैंने रुपया निकाला तो बोले, "चलो, एक चिट्ठी ३-४ दिनों से स्टैम्प के दो आने के

पैसों के अभाव में बिना छोडी पड़ी है. उसे पोस्ट ऑफिस में छोड़ देंगे और तुम्हें मेरी उधारी की दुकान पर चाय भी पीने को मिलेगी."

वह चिट्ठी रेडियो स्टेशन के उस समय के डाइरेक्टर बुखारी साहब को लिखी गयी थी. निरालाजी ने लखनऊ रेडियो स्टेशन का रु. १७५/ का कविता-पाठ का आमंत्रण यह कह कर ठुकरा दिया था कि 'चूंकि जिगर मुरादाबादी को रेडियो वाले रु. २००/ कविता-पाठ के देते हैं और हिन्दी में मैं अपना स्थान वही समझता हूँ जो उर्दू में जिगर साहब का है, इसलिए दो सौ रुपये से कम लेने में हिन्दी उर्दू की तुलना में नीची ठहरती है, जो मुझे मान्य नहीं है.'

चिट्ठी छोड़ने के बाद निरालाजी अपनी उधार की सुविधावाली दुकान पर मुझे चाय पिलाने ले गये. उस रेस्तराँ के मालिक ने निरालाजी का चित्र दुकान में टाँग रखा था जिसके नीचे लिखा था– 'निरालाजी यहीं चाय पीते हैं'. उसने हमलोगों की बड़ी आवभगत की और डटकर चाय नाश्ता कराया. निरालाजी ने हँसते हुए कहा, "मेरी तरह इस रेस्तराँवाले की भी किस्मत फूटी है क्योंकि यह भी साहित्यिक रुचि का व्यक्ति है और साहित्यिकों को उधार चाय-नाश्ता कराता है."

निरालाजी का बाहरी रूप जितना कठोर और दम्भपूर्ण लगता था, उनका अंत:स्वरूप उतना ही कोमल और उदार था. बस इतनी सी बात थी कि वे हिन्दी की और हिन्दी के साहित्यकारों की अवमानना नहीं सह सकते थे. इसके लिए उन्होंने गाँधीजी और नेहरूजी को भी आड़े हाथ लेने में कसर नहीं रखी थी. उभरते हुए नए कवियों को वे भरपूर प्रोत्साहन देते थे जैसा कि उपर्युक्त संस्मरणों से स्पष्ट है. हमें किसी साहित्यकार को उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति के आधार पर ही तोलना चाहिए. अपनी असंतुलित अवस्था में निरालाजी ने बहुत कुछ ऐसा लिखा है जो 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास'

(खंडकाव्य) के कवि के अनुरूप नहीं है. हमें उन्हें नज़रंदाज़ करके उनकी श्रेष्ठतम कृतियों के आधार पर ही उनका स्थान साहित्य में निश्चित करना चाहिए और इस दृष्टि से वे वे वर्तमान कवियों में शीर्षस्थान के अधिकारी हैं.

निरालाजी और पंतजी में अत्यंत घनिष्ठता होते हुए भी काव्य-शैली की दृष्टि से वे दोनों एक दूसरे के सर्वथा विपरीत थे. आप चाहें तो उन्हें पूरक भी कह सकते हैं. एक ओर निरालाजी की ओजगुण प्रधान और जगह-जगह ऊबड़-खाबड़ लगनेवाली रचनाएँ हैं तो दूसरी ओर पंतजी की माधुर्य-रस-प्रधान रचनाएँ है जिनमें कोमल-कान्त पदावली का ही सर्वत्र प्रयोग हुआ है. एक बार मैं निरालाजी के उसी हाथी मंडी वाले स्थान पर पहुँचा तो उन्होंने पहुँचते ही कोई नयी कविता सुनाने का आदेश दिया. १९४१ की ही बात है जब मैं इंटर का विद्यार्थी था. मैंने एक नयी रचना सुनायी जिसमें पावस की संध्या का चित्रण था. रचना यों थी-

"पावस की यह संध्या उदास
बिखरी तृण-तरु कलि-कुसुमों में, झाडी झुरमुट के आसपास
दो विहग तिमिर में निष्प्रभ से
उड़-उड़ कर मुड़ आते नभ से, दिग्वधुएँ करतीं मंद हास
संध्या तट से गिरि प्रांतर तक
सब शांत, मौन, विस्मित, अपलक
गतिशून्य लहरियाँ रहीं भटक
दिन की कठोर यात्रा से थक
नीला विषाद-दृग गगन देख
आँसू-सा तारा उगा एक
नत मुख सरसिज कलियाँ अनेक
दिन गया किरण के चरण टेक

गायें कर पदरज-धूसर मग
पहुँची अब गाँवों के लगभग
लघु नौकायें डगमग-डगमग
तिरतीं लहरों पर अलग-अलग
दूरस्थ ताल- तरु से उठकर
आता कम्पित अजान का स्वर
कवि विकल वेदना से कातर
सूने ये संगीहीन प्रहर
भरता अभाव की एक साँस
पावस की यह संध्या उदास"

रचना सुनकर निरालाजी सचमुच उदास हो गये. मेरे साथ बेढब बनारसीजी भी थे जो मेरे गुरु थे. निरालाजी कुछ क्षणों के मौन के उपरांत बोले, "बेढबजी, मैं देख रहा हूँ, विद्यार्थियों और नवयुवक कवियों पर मुझसे कहीं अधिक पंत का प्रभाव है."

यह स्पष्ट था कि मेरी उपर्युक्त कविता पंतजी की शैली के अधिक निकट थी. निरालाजी चाहते थे कि मैं उनका प्रतिनिधित्व करूँ और उन्होंने अपना अशेष स्नेह भी मुझपर उँड़ेल रखा था. पंतजी को तो मैंने उस समय तक देखा भी नहीं था. मेरी कविता में अपने को न पाकर और पंतजी को प्रतिबिंबित पाकर उन्हें धक्का-सा लगा. यद्यपि एक दो वर्ष के बाद ही मैने पंतजी की शैली का सर्वथा परित्याग कर दिया क्योंकि मुझे उसमें गहरी जीवन-अनुभूति न मिलकर केवल किशोर वय को लुभानेवाली हल्की-फुल्की कल्पना की चुहल ही मिलती थी जो मेरी प्रवृत्ति के अनुरूप न थी. परन्तु १६-१७ वर्षों के नवयुवकों पर तो स्पष्टत: उन दिनों पंतजी की ही कविता का जादू था.

निरालाजी ने थोड़ी देर बाद कहा, "अब मेरी भी एक नयी कविता सुनो," और उन्होंने जो कविता सुनायी उसकी दो पंक्तियाँ याद आ रही हैं.

"बिच्छुबूटी बदन में लग गयी रे
गोरे, काले, पीले, नीले सबकी हिम्मत भग गयी रे"

मैंने इस रचना को बिलकुल अकवित्वपूर्ण समझा और चुप बैठा रहा. निरालाजी ने कहा, "गोरे, काले, पीले का अर्थ नहीं समझे? बिच्छुबूटी है यह महायुद्ध जो योरप में चालू हो गया है और गोरे, काले, पीले हैं योरप, भारत और अफ्रीका के देश, और चीनी तथा जापानी जो सब इस युद्ध में संलग्न हो गये हैं."

मैं फिर भी चुप रहा. निरालाजी हँसते हुए बोले, 'अच्छा, अब गुलाब, तुम्हारी रूचि की नयी रचना सुना रहा हूँ." और उन्होंने सुनाया :

"नूपुर के सुर मंद रहे
जब न चरण स्वच्छंद रहे
उतरी नभ से निर्मल राका
पहले जब तुमने हँस ताका
बहुविध प्राणों को झंकृत कर बजे छंद जो मंद रहे
नयनों के ही साथ फिरे वे
मेरे घेरे नहीं घिरे वे
तुमसे चल, तुममें ही पहुँचे, जितने रस, आनंद रहे
नूपुर के सुर मंद रहे"

रचना सुनते ही मैं खिल पड़ा. यह रचना निरालाजी के गीत-संग्रह 'अणिमा' की पहली कविता है.

निरालाजी हँसते हुए बोले, "बेढबजी, मैं जानता था, गुलाब को ऐसी ही रचना पसंद आयेगी. बिच्छुबूटी वाली रचना तो मैंने आपके लिए सुनायी

थी. बाद में लगता है, निरालाजी ने खुद ही उस रचना को नष्ट कर दिया क्योंकि उनके किसी भी संग्रह में वह दिखाई नहीं दी.

निरालाजी रवीन्द्रनाथ के कुछ गीतों को बड़ी मधुर शैली में गाया करते थे. उनका एक सुप्रसिद्ध गीत 'लाज लगे तो जाओ' रवीन्द्रनाथ के किसी गीत का समानांतर था जिसमें कुछ-कुछ इसी प्रकार का भाव था. निरालाजी दोनों गीत कभी-कभी हम लोगों को गाकर सुनाया करते थे. मुझे निरालाजी का गीत रवीन्द्रनाथ के गीत से अधिक सुन्दर लगता था.

निरालाजी न केवल लम्बे-लम्बे केश ही रखते थे, उनमें सुगन्धित इत्र भी चुपड़ा करते थे. एक बार उन्होंने उठकर कमरे में बैठे सभी लोगों को अपने बाल सुँघाने शुरू किये. मेरी बगल में कॉलेज की एक-दो लड़कियाँ भी बैठी थीं. वे पीछे हट जाना चाहती थीं परन्तु निरालाजी कहाँ माननेवाले थे. एक तो बिचारी घबराहट में पीछे हटती हुई टेबुल से टकराकर गिर भी पड़ी. इसी प्रकार धोती की किनारी कैसी होनी चाहिए, इस पर भी एक बार उन्होंने लम्बा व्याख्यान देकर कमरे में बैठे सभी व्यक्तियों की धोती की किनारी से अपनी धोती की किनारी की श्रेष्ठता प्रमाणित कर दी.

निरालाजी पर एक बार हिन्दी में ग़ज़ल का प्रयोग करने का शौक सवार हुआ. उन दिनों वे काशी आये थे और मैं उनके साथ ही एक बैठक में ठहरा था. उन्होंने दिनभर 'मफ़लून', 'मफऊलुन' कह-कह कर और उसके अंदाज़ पर हिन्दी पदावली सुना-सुना कर मेरा दिमाग खराब कर दिया. उन दिनों उन पर पागलपन का कुछ-कुछ दौरा आने लगा था और मैंने भी इसे पागलपन का प्रलाप ही समझा क्योंकि मैं उन दिनों इन शब्दों का अर्थ नहीं जानता था.

बेढबजी ने मुझे बता रखा था कि निरालाजी की किसी भी बात का प्रतिवाद नहीं करना है क्योंकि उससे पागलपन का दौरा बढ़ जाता है. बाद में

मुझे बेढबजी ने बताया कि यह उर्दू का मीटर या छंद-विधान अर्थात वज़ा ठीक करने का तरीका है. फिर भी इस प्रकार वज़न के फार्मूले पर शब्द जोड़कर ग़ज़ल तैयार करने को मैंने पागलपन ही समझा और सहृदय पाठक जानते हैं कि निरालाजी ने ग़ज़लों के रूप में जो कुछ जोड़-तोड़ की है उसमें उनकी प्रतिभा का दुरुपयोग ही हुआ है क्योंकि ग़ज़ल बिना संवेदना के नहीं हो सकती और १९४६ में, जब की यह घटना है, निरालाजी ग़ज़ल की संवेदना खो चुके थे.

मैंने जब १९७० में ग़ज़लों को हिन्दी में उतारना चाहा तो 'मफ़ऊल', 'मफ़ऊलुन' की ओर ध्यान भी नहीं दिया और मुझे प्रसन्नता है कि मेरे कानों ने और मेरी लय की पहचान ने मुझे धोखा नहीं दिया क्योंकि चार ग़ज़ल संग्रहों में ३६४ गज़लें लिखने के बाद भी किसी उर्दूवाले ने आज तक मेरी किसी पुस्तक में वज़न गिरने की शिकायत नहीं की है. मैंने प्रेम की संवेदना ग़ज़लों में उतारने की कोशिश की है और उसके लिए तदनुरूप उर्दू-सी लगने वाली सरल भाषा का प्रयोग उनमें किया है. मेरे प्रथम ग़ज़ल संग्रह 'सौ गुलाब खिले' के १९७३ में प्रकाशित होने के बाद औरों ने भी इस दिशा में प्रयास किया और १९७५-७६ के आसपास दुष्यंत कुमार ने सामाजिक और राजनीतिक व्यंग की शैली में ग़ज़ल लिखकर अच्छी लोकप्रियता प्राप्त की.

एक बार १९४१ में इलाहाबाद के पी. सी. बनर्जी होस्टल में एक बड़ा कवि-सम्मलेन हुआ जिसमें निरालाजी, बच्चनजी, बेढबजी आदि सभी कवियों ने तथा मैंने भी भाग लिया था. उन दिनों निरालाजी अपनी 'कुकुरमुत्ता' कविता सब जगह अवश्य सुनाते थे, मैं मंच पर उनकी बगल में ही बैठा था. उन्होंने 'कुकुरमुत्ता' कविता पढ़नी शुरू की जिसमें प्रारम्भ में ही आया है –

'अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पायी ख़ुशबू रंगों आब'

वहाँ साइंस कॉलेज के एक वरिष्ठ बंगाली प्रोफ़ेसर आगे ही बैठे थे. वे हिंदी कम समझते थे परन्तु औपचारिकतावश सुन रहे थे. उन्होंने समझा कि मैंने निरालाजी को किसी बात से रुष्ट कर दिया है और अपनी बगल के एक सज्जन से बोले, "अभी तो निरालाजी गुलाबजी से बड़े प्रेम से बातें कर रहे थे. एकाएक यह क्या हो गया?"

यह बात जोरों से कही गयी थी और आगे की पंक्ति में तथा मंच पर बैठे लोगों में इसे सुनकर हँसी की लहर दौड़ गयी. मैं भी सुनकर हँसे बिना नहीं रह सका.

राज़ की बात

निरालाजी की एक विशेष आदत यह थी कि वे मौज में आकर अंग्रेजी में बोलने लगते थे. कोई भी अंग्रेजी का शब्द उनके सामने आता तो उसका ऐक्सेंट वे बोलनेवाले से पूछकर उनकी अंग्रेजी को छिछला साबित कर देते क्योंकि भारतीय लोग अंग्रेजी के शब्दों के ऐक्सेंट की कम ही जानकारी रखते हैं. इसकी आवश्यकता भी नहीं है.

निरालाजी का उन दिनों एक प्रिय शब्द था 'राज़' अर्थात् भेद. वे थोड़ी देर बोलने के बाद कहते, 'ये सब राज़ की बातें हैं.' 'कुकुरमुत्ता' की भूमिका में भी उन्होंने इसका उपयोग किया है. कभी कहते, 'महात्माजी के लिए पहले-पहल 'महात्मा' शब्द का प्रयोग मैंने किया, मगर यह राज़ की बात है.' कभी-कभी उनके पागलपन में विनोद भी रहता था. एक बार नागरी प्रचारिणी सभा में निमंत्रित होने पर उन्होंने लिखा- 'एक सहस्र रौप्य मुद्रा का मेरे लिए प्रबंध करके रखिये. हाँ, यदि रौप्य मुद्रायें न हो तो नोटों से भी काम चल सकता है.' उस समय तक चाँदी के रुपयों और नोटों में कोई मूल्यभेद नहीं था.

निरालाजी कभी-कभी पागलपन के दौरे में ऐसी उटपटाँग बातें बोलने लग जाते कि हम लोग उसके बाद उन पर खूब हँसा करते. एक बार बोलने लगे, "मैं जब पाँच वर्ष का था तो मैंने अंग्रेजी में बोलना शुरू कर दिया था," और फिर बोले, "And my father gave a slap to queen Victoria. Do you know when I discussed chhayavad with Roosevelt, what did he say and you should know that I have met Stalin also."

परन्तु अनर्गल बातों के साथ कभी पते की बात भी कहते थे. एक बार पालग्रेव की 'गोल्डेन ट्रेजरी' दिखाकर मुझसे बोले, "बताओ, फिट्जेराल्ड की कौन सी रुबाई इसमें तुम्हें पसंद है?" मैंने कहा:

"Ah love! Could you and I with Fate conspire
To grasp the sorry Scheme of Things entire,
Would not we shatter it to bits – and then
Re-mould it nearer to the Heart's desire!"

निरालाजी ने दूसरी रुबाई दिखाते हुए कहा, "मुझे तो यह दूसरी पसंद है :

'Yet Ah, that Spring should vanish with the Rose!
That youth's sweet-scented manuscript
should close!
The Nightingale that in the branches sang,
Ah whence, and whither flown again, who knows!'

मैंने कहा, "निरालाजी, पहली रुबाई में अव्यक्त सत्ता का संकेत है और सृष्टि को फिर से बनाने की चुनौती है." निरालाजी ने कहा, "But Nirala loves poetry more than the Absolute. मेरी चुनी हुई रुबाई में काव्यत्व अधिक है."

इसी प्रकार एक बार कवि-सम्मलेन में एक कालेज की लड़की ने मुझे गुलाब के फूलों का गुलदस्ता भेंट किया. लौटते समय निरालाजी ने मुझसे कहा, "तुम्हें राज़ की बात बताता हूँ. वह लड़की तुम्हारी और आकर्षित है."

उनके 'राज़' वाले शकुनतकिये को मैं जानता था इसलिए मैंने हँसकर टाल दिया. परन्तु कुछ दिनों बाद उनकी बान की सत्यता सामने आ गयी. उस प्रसंग को देना यहाँ समीचीन नहीं है.

निरालाजी शब्दों के प्रति बहुत जागरूक रहते थे. एक बार मेरे सामने उन्होंने दिनकरजी को फटकारते हुए कहा, "शब्दों के प्रयोग में सावधानी नहीं बरतोगे तो चाहे कुछ भी बन जाओ, अच्छे कवि नहीं बन सकोगे. मैं एक शब्द के लिए कभी छः-छः महीने प्रतीक्षा करता हूँ."

यह बात १९४१ में मुजफ्फरपुर में सुहृद-संघ के विराट आयोजन के समय की है. उस समय दिनकर तेजी से उभर रहे थे. मुझे एक कविता को समझाते हुए उन्होंने कहा, "देखो, इसके तीन पदों में कैसा क्रम का निर्वाह है- 'साथ रहो', 'बाँह गहो', 'बात कहो'."

वह कविता 'कुछ भी हुआ न हो' के शीर्षक से निरालाजी की पुस्तक 'अनामिका' के प्रथम पृष्ठ पर शायद उनकी ही हस्तलिपि में छपी है. एक बार उनकी एक प्रसिद्ध कविता की पंक्तियों –

"वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर,
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार"

को सुनकर मैंने कहा, "निरालाजी, इसमें 'स्वीकार' के स्थान पर 'सुकुमार' होना चाहिए. निरालाजी दो मिनट विचार करते हुए चुप रहे. फिर बोले, "तुम्हारा सुझाव सुन्दर है परन्तु 'स्वीकार' में उस पत्थर तोड़नेवाली की

अपने वातावरण को स्वीकृति देने की बात आ जाती है जो 'सुकुमार' में नहीं आती इसलिए 'स्वीकार' ही ठीक है."

अंत में एक मनोरंजक संस्मरण और. हितैषीजी हिन्दी और उर्दू के बहुत सिद्धहस्त कवि थे और अक्खडपन तथा मस्ती में निरालाजी से टक्कर लेते थे. उर्दू में उनकी गज़लें बड़ी लोकप्रिय थीं जिसका एक शेर –

"शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले
वतन पर मरनेवालों का, यही बाकी निशाँ होगा"

आज भी लोगों की ज़बान पर है. हिन्दी में सवैये लिखने में तो वे बेजोड़ थे. एक बार बस्ती में उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मलेन में निरालाजी और हितैषीजी में मुठभेड़ हो गयी. निरालाजी की प्रसिद्ध कविता 'खजोहरा' में उर्दू के वज़न पर छंद लिया गया था. परन्तु वह उर्दू के हिसाब से सही वज़न में नहीं आता है. उसमें एक बड़े लम्बे चौड़े शरीरवाली बुआ का वर्णन है जिन पर खजोहरा गिरा और वे आधी नंगी दशा में भागीं. मैं निरालाजी की श्रेष्ठ कविताओं में इसे मानता हूँ. प्रारम्भ की पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं-

"दौड़ते हैं बादल काले-काले
हाईकोर्ट के वकील मतवाले
चाहिए बरसना जहाँ, नहीं बरसे
सूखता धान देखा, नहीं तरसे
फिर भी यह बस्ती है मोद में
नतनी सी नानी की गोद में"

हितैषीजी ने कहा, "यह छंद ठीक नहीं है. इसमें रवानी नहीं है. सही उर्दू का छंद ज़बान पर फिसलना चाहिए."

हमलोगों ने कहा, "इसके सही रूप का उदाहरण दीजिये."

हितैषीजी ने कहा, "उदाहरण मैं अभी बना देता हूँ." और उन्होंने जोड़कर सुनाया:

"निराला के थी एक निराली बुआ
कि डरता था जिससे हरेक मर्दुआ
महीना जो सावन का पूरा हुआ
बुलाकर के लायी गयी झट बुआ
आने का अच्छा नतीज़ा हुआ
कि आते ही आते भतीजा हुआ
-- यानी निरालाजी पैदा हो गये."

हितैषीजी के यह कहते ही भारी हंगामा खड़ा हो गया. निरालाजी खटिया से उचककर खड़े हो गये और उन्होंने कुरते की बाँहें चढ़ा ली. बड़ी कठिनाई से पं. श्रीनारायणजी, बेढबजी आदि ने मिलकर वातावरण को शांत किया.